ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 291-293
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-II, Issues-10 YEAR- Dec -2018

प्रातिशाख्य, अष्टाध्यायी तथा भाषाविज्ञान में मात्रा विचार महत्व

डॉ0 विनीता सिंह

एसो0 प्रो0– संस्कृत विभाग, कन्या महाविद्यालय आर्य समाज भूड़, बरेली (उ0प्र0) भारत

Received- 10.11.2018, Revised- 16.11.2018, Accepted - 19.11.2018 E-mail: vinita1963singh@gmail.com

सारांश : ***प्राचीन ध्वनिविदों में वर्णसमाम्नाय प्रस्तुत करके उन वर्णो का अनेकविध विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। इस क्रम में विभिन्न वर्णों के उच्चारण में कितना समय लगना चाहिए या सामान्यतः लगता है इस विषय पर भी विविध ग्रन्थों में पर्याप्त विचार दृष्टिगोचर होता है। वैदिक वर्णो के लिए प्रातिशाख्य आदि ग्रन्थों में विभिन्न ध्वनियों के उच्चारणकाल की विशद व्याख्या की गयी है। महर्षि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में भी वर्णों के उच्चारणकाल की स्पष्ट व्याख्या की है। इन ग्रन्थों के आधार पर भाषा विज्ञान में ध्वनि नियमों का समावेश किया गया है।***

कुंजीभूत शब्द– प्राचीन, ध्वनिविदों, वर्णसमाम्नाय, विश्लेषण, उच्चारण, समय, विचार, दृष्टिगत, प्रातिशाख्य।

प्रातिशाख्यों में मात्रा विचार– प्रातिशाख्य ग्रन्थों में वर्णो के उच्चारण में लगने वाले समय के सम्बन्ध में पर्याप्त विवेचना की गई है। इनमें अखण्डवर्ण काल, वर्णांश या सन्ध्यक्षर काल तथा विरामकाल के विषय में विवेचना की गयी है। कुछ बिन्दु दृष्टव्य हैं।

अ–अखण्डवर्णकाल– ऋक् प्रातिशाख्य में 'मात्रा' का विधान नहीं किया गया है किन्तु 'ह्रस्व' स्वर को एकमात्रिक कहा है– "मात्रा ह्रस्वः"। (1) तैत्तिरीय प्रातिषाख्य में वर्णो को मापने वाली समय की इकाई के लिए मात्रा का प्रयोग किया गया है।

"द्वियम एके द्वियमपरे ता अणुमात्राः। (2)।"

वाजसनेयि प्रातिषाख्य में भी मात्रा का विधान न करके मात्रा शब्द को व्यवहृत किया गया है। व्यंजन के उच्चारण काल को आधार बनाकर वाजसनेयि प्रातिषाख्य में 'अणु' तथा 'परमाणु' मात्रा को दर्शाया गया है। व्यंजन की मात्रा (उच्चारण काल) का आधा अर्थात् 1.4 अणु कहलाता है और अणु का आधा अर्थात् 1.8 मात्रा काल 'परमाणु' संज्ञक होता है। "तदर्धमणु", "परमाण्वर्धाणुमात्रा"। (3)। व्यंजन अर्धमात्रा काल में उच्चरित् है। "व्यंजनमर्धमात्रा। (4)।"

तैत्तिरीय प्रातिषाख्य में ऋकार, ऌकार और अकार को ह्रस्व कहकर उनकी एकमात्रा स्वीकार की गई है। अकार के उच्चारण काल के समान काल वाले अन्य स्वरों तथा 'अनुस्वार' को ह्रस्व (5) कहकर उनकी भी एकमात्रिकता ही स्वीकार की गई है। वाजसनेयि प्रातिषाख्य और ऋक् तन्त्र ह्रस्व स्वर की एक मात्रिकता स्वीकार करता है (6)। चतुरअध्यायिका ह्रस्व स्वर की मात्रा का विधान करते हुए कहता है– "एक मात्रो ह्रस्वः। (7)।" ऋक् प्रातिषाख्य दीर्घस्वर को ह्रस्व से 'अन्य' कहकर दीर्घस्वर की द्विमात्रिकता मानी है (8)। तैत्तिरीय प्रातिषाख्य तथा वाजसनेयि प्रातिषाख्य दीर्घ को ह्रस्व से दोगुना कहकर दीर्घ को द्विमात्रिक स्वीकार करते हैं (9)। चतुरध्यायिका और ऋक् तन्त्र में दीर्घ स्वर का उच्चारण काल दो मात्रा माना है– "द्विमात्रो दीर्घः (10)।" "द्वे दीर्घम् (11)।" ऋक् प्रातिषाख्य, तैत्तिरीय प्रातिषाख्य तथा वाजसनेयि प्रातिषाख्य में प्लुत स्वरों का उच्चारण काल ह्रस्व का तीन गुना कहा है (12)। चतुरध्यायिका और ऋक् तन्त्र में प्लुत (वृद्ध) को तीन मात्रा वाला स्वर कहा है–

"त्रिमात्रः प्लुतः"। (13)। "तिस्रो वृद्धम्"। (14)।

ऋक् प्रातिषाख्य में एक मात्रा और दो मात्रा के उच्चारण काल को इस प्रकार स्पष्ट किया है–

"चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रा वायसोऽब्रवीत्"। (15)।

इस प्रकार प्रातिशाख्यों ने अखण्ड वर्णो में ह्रस्व दीर्घ प्लुत को क्रमशः एकमात्रिक, द्विमात्रिक तथा त्रिमात्रिक स्वीकार किया है। शिक्षा ग्रन्थों में भी यही स्वी.त है।

आ–वर्णांश काल या सन्ध्यक्षर काल– ऋक् प्रातिशाख्य और चतुराध्यायिका में सन्ध्यक्षर वर्ण ए ओ ऐ तथा औ इन वर्णो में द्विस्थानता है अर्थात् दो स्वरों की संधि से उत्पन्न कहे गए हैं। 'ए' और 'ओ' द्विस्थानी होने पर भी समानाक्षर माने गए हैं (16)। सन्ध्यक्षरों में प्रयुक्त दो वर्णों में किस वर्ण का कितना उच्चारण काल है इस विषय पर भी विवेचन किया है– ऋक् प्रातिषाख्य में कहा गया है कि ऐ तथा औ 'ह्रस्व' स्वर वर्ण तथा 'अनुस्वार' के योग के समान है। यहां भाष्य करते हुए उब्बट ने कहा है कि 'अनुस्वार' से पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर वर्ण को आधी 'स्वर भक्ति' से कम समझना चाहिए। "ह्रस्वामर्धस्वर भक्त्यासमाप्ताम्। (17)।"

उब्बट ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा कि ऐ तथा औ में 'इ' तथा 'उ' वर्ण की अधिक 'मात्रा' होती है तथा 'अ' वर्ण की अल्प 'मात्रा' होती है। ऋक् प्रातिषाख्य के अनुसार 'ए' में 'अ' तथा 'ड' और 'ओ' में 'अ' तथा 'उ' समान परिमाण में हैं (18)। तैत्तिरीय प्रातिषाख्य में 'ए' तथा 'ओ' को एक वर्ण मानकर इसके अवयवों की व्याख्या नहीं की गई है। 'ऐ' तथा

'औ' में प्रथम तत्व 'अ'अर्द्धमात्रा काल वाला है। 'ऐ' के द्वितीय तत्व 'ड' का काल डेढ़ मात्रा है तथा 'औ' के द्वितीय तत्व 'उ' का काल डेढ़ मात्रा है।

"अकारर्धमैकारौकारयोरादिः।" "इकारोध्यर्थः पूर्वस्य शेषः।" "उकारोध्यर्धः पूर्वस्य शेषाः। (19)।"

वाजसनेयि प्रातिषाख्य में 'ए' तथा 'ओ' को एकाक्षर माना गया है। 'ऐ' तथा 'औ' में पूर्व मात्रा (एक) अकार (कंठय) की है। 'ऐ' में परवर्ती मात्रा (एक) 'इ' (तालु) की तथा 'औ' में परवर्ती मात्रा (एक) 'उ' (कंठ) की है।

"एकारौकारयोः कण्ठया पूर्वा मात्रा ताल्वोष्ट्यो रूत्तरा। (20)।"

चतुरध्यायिका में कहा गया है कि सन्ध्यक्षरों का उच्चारण एक वर्णवत् है। 'ऐ' तथा 'औ' 'स्थान' की .ष्टि से एक वर्णवत् उच्चारित नहीं होते। शिक्षाकारों व प्रातिशाख्यकारों के सन्ध्यक्षर सम्बन्धी अवयवों के उच्चारण काल में पर्याप्त विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इसका कारण संभवतः संहितागत अन्तर था अथवा वाग्वृत्ति की भिन्नता से इन वर्णो के उच्चारण में ध्वनि परिवर्तन तीव्रता से हुआ। प्रायः शिक्षाकारों व प्रातिशाख्यकारों ने व्यंजन का उच्चारण काल आधी मात्रा माना है। ऋक् तन्त्र व्यंजन के उच्चारण में आधी मात्रा तथा एक मात्रा के काल का विकल्प प्रदान करता है (21)। चतुरध्यायिका में व्यंजन का उच्चारण काल एकमात्रा माना गया है (22)। तैत्तिरीय प्रातिषाख्य के भाष्यकार गार्ग्य गोयालयज्वा के अनुसार ह्रस्व, दीर्घ व प्लुत स्वरों से अनुनासिक वर्णो का उच्चारण काल भिन्न–भिन्न होता है। ह्रस्ववर्ती अनुनासिक द्विमात्रिक तथा दीर्घवर्ती व प्लुतवर्ती अनुनासिक एकमात्रिक होता है (23)। यह नियम पद पाठ के अनुसार है। इसी भाष्य में स्वर रहित व्यंजन को अणुमात्रिक कहा है। व्यास शिक्षा भी यही कहती है (24)। प्राचीन ध्वनिविदों ने आधी मात्रा में श्रुतिगोचर होने के कारण व्यंजन को अर्धमात्रिक स्वीकार किया है। चतुरध्यायिका ने व्यंजन को एकमात्रिक माना है। इस प्रकार व्यंजन के उच्चारण में आभ्यन्तर प्रयत्न से लेकर स्फुटन होने तक का समय व्यंजन का उच्चारण काल स्वीकार किया है।

इ–विराम काल– तैत्तिरीय प्रातिषाख्य में ऋग्विराम को तीन मात्रा, पद विराम को दो मात्रा, विवृत्ति को एक मात्रा तथा समान पद विवृत्ति विराम को आधी मात्रा का कहा गया है (25)। सोमयार्य ने तैत्तिरीय प्रातिषाख्य के त्रिभाष्य रत्न में शिक्षाकारिका का उद्धरण देते हुए स्वीकार किया है कि विवृत्तियों में से वत्सानुसृति तथा वत्सानुसारिणी का उच्चारण काल एक मात्रा, पाकवती का उच्चारण काल तीन चौथाई तथा पिपीलिका का उच्चारण काल एक चौथाई मात्रा होता है (26) ऋक् प्रातिषाख्य के भाष्यकार उब्बट के अनुसार पिपीलिका विवृत्ति तीन चौथाई मात्रा वाली, पाकवती विवृत्ति एक चौथाई मात्रा वाली, वत्सानुसृति एवं वत्सानुसारिणी विवृत्तियां आधी मात्रा काल वाली होती हैं (27)। ऋक् तन्त्र में विराम का नियम इस प्रकार कहा है कि विराम में एक मात्रा होती है। नित्यविरत तथा गाथा में दो मात्राएं होती हैं। साम में तथा भक्त्यन्त में तीन मात्राएं होती हैं।

"विरामे मात्रा। नित्यविरते द्विमात्रम्। गाथासु। त्रिमात्रं सामसु (28)।"

इसके अतिरिक्त अनुस्वार तथा उच्चारणवृत्ति पर भी काल विचार किया गया है। अनुस्वार की मात्रा पर विचार करते हुए वाजसनेयि प्रातिषाख्य में कहा गया है कि ह्रस्व स्वर से परे अनुस्वार डेढ़ मात्रा का तथा पूर्ववर्ती स्वर आधी मात्रा का होता है। दीर्घ स्वर से परे अनुस्वार आधी मात्रा का तथा पूर्ववर्ती स्वर डेढ़ मात्रा का होता है (29)। यहां स्पष्ट है कि ह्रस्ववर्ती और दीर्घवर्ती अनुस्वार अपने पूर्ववर्ती स्वर के साथ द्विमात्रिक होता है और दोनों स्थितियों में स्वर व अनुस्वार का काल भिन्न–भिन्न होता है। याज्ञवल्क्य षिक्षा में अनुस्वार पूर्ववर्ती स्वर सहित त्रिमात्रिक है अर्थात् ह्रस्ववर्ती अनुस्वार द्विमात्रिक तथा दीर्घवर्ती अनुस्वार एकमात्रिक होता है। प्रातिशाख्यों में विभिन्न उद्देश्यों के अनुसार उच्चारण वृत्ति का विचार करते हुए वृत्तियों के अनुसार उच्चारण काल का निध ारण किया गया है। ऋक् प्रातिषाख्य के अनुसार प्रत्येक परवर्ती वृत्ति में मात्रा का आधिक्य होता है।

"मात्रा विशेषः प्रतिवृत्युपेति। (30)।"

भाष्यकार उब्बट ने वृत्तियों के अनुसार उच्चारण की व्याख्या की है। उनकी व्याख्या से स्पष्ट होता है कि यदि द्रुतवृत्ति का उच्चारण काल नव पल का है तो मध्यमवृत्ति का उच्चारण काल बारह पल का और विलम्बित वृत्ति का उच्चारण काल सोलह पल का होना चाहिए (31)। ऋक् तन्त्र में इन वृत्तियों का अनुपात 3:4:5 माना गया है। प्रातिशाख्यों में वृत्ति के विभिन्न उच्चारण काल की निश्चित अवधि नहीं कही गई है। इसका कारण शाखानुसार अथवा व्यक्ति की विशिष्ट वाग्वृत्यनुसार उपलब्ध विभिन्नता है अतः वृत्ति को अधिकतम या न्यूनतम काल सीमा में बांधना कठिन है।

अष्टाध्यायी में मात्रा विचार महर्षि पाणिनि ने अष्टाध यायी में विभिन्न वर्णो के उच्चारण काल प्रस्तुत किया है। संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है–

अ–अखण्डवर्ण काल– पाणिनि ने ह्रस्व स्वर को एकमात्रिक, दीर्घ स्वर को द्विमात्रिक तथा प्लुत स्वर को त्रैमात्रिक कहा है। अष्टाध्यायी में 'मात्रा' की अवधि का परिगणन न करके 'ऊकाल' का उच्चारण साम्य उद्धृत किया गया है। अतः व्याकरण शास्त्र काल का आवधिक परिगणन नहीं प्रस्तुत करता। "ऊकालोऽझस्वदीर्घप्लुतः। (32)।"

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-II, Issues-10 YEAR- Dec -2018

आ–वर्णांश काल या सन्ध्यक्षर काल– अष्टाध्यायी के महाभाष्यकार ने प्लुत सन्ध्यक्षरों– 'ऐ' तथा 'औ' को चारमात्रिक माना है। महाभाष्यकार के अनुसार सन्ध्यक्षरों के परवर्ती भाग 'इकार' अथवा 'उकार' प्लुत उच्चारित होता है अर्थात् परवर्ती भाग की मात्रा में वृद्धि होती है (33)। महाभाष्यकार शाकटायन के मत को भी उद्धृत करते हैं। शाकटायन के अनुसार 'ऐ' तथा 'औ' के दोनों तत्व अर्थात् कमशः अकार और इकार, अकार और उकार बराबर मात्रा में होते हैं। महाभाष्यकार और शाकटायन में सन्ध्यक्षरों के उच्चारण काल के विषय में मत वैभिन्य है।

इ–विराम काल– अष्टाध्यायी के अनुसार अवसान की विराम संज्ञा होती है। 'विरामोऽवसानम्'। (34)। व्याकरण में वर्णो का अभाव 'विराम' कहा गया है। किन्तु विराम के भेद या काल के विषय में नहीं कहा गया है। अनुस्वार तथा वृत्ति विषयक मात्रा निरूपण व्याकरण के ग्रन्थों में दृष्टिगोचर नहीं होता है।

भाषाविज्ञान में मात्रा विचार– आधुनिक ध्वनिविदों ने यन्त्रों की सहायता से ह्रस्व स्वर तथा व्यंजन के उच्चारण काल को एक मात्रा स्वीकार किया है (35)। आधुनिक भाषाविज्ञानी डा0 बाबू राम सक्सेना व्यंजनों के उच्चारण में भी दीर्घ और ह्रस्व संज्ञा का विधान करते हैं। "पका" में 'क्' ह्रस्व है और "पक्का" में 'क्' दीर्घ है। वस्तुतः देखा जाए तो हिन्दी में स्वरों की अपेक्षा व्यंजनों को ह्रस्वदीर्घ कहना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि उल्लिखित ह्रस्व और दीर्घ स्वरों (अ आ अथवा इ ई आदि) में स्थान भेद पर्याप्त है किन्तु ह्रस्व और दीर्घ (क् क्क् आदि) व्यंजनों में स्थान भेद बिल्कुल नहीं है। (36)।" डा0 बाबू राम सक्सेना प्राचीन भाषा में प्रयुक्त वृत्ति विभाग पर विचार नहीं करते हैं। वे ध्वनियों के तीन गुणों में मात्रा, सुर तथा बलाघात स्वीकार करते हैं। उनके द्वारा विचारित 'सुर' प्राचीनविदों द्वारा स्वी.त उदात्त अनुदात्त और सम स्वरतत्व ही हैं। यदि इन्हें वृत्ति अर्थ में अन्तर्निहित माने तो इनका प्रयोग अर्थ विभिन्नता न होकर भाव विभिन्नता के लिए होता है। डा0 सक्सेना से स्पष्ट किया है– "वर्तमान काल में आर्य भाषाओं में सुर का प्रयोग केवल मनोराग अथवा भावातिरेक, विधि, निषेध, प्रश्न, स्वी.ति, सन्तोष, विस्मय आदि को व्यक्त करने के लिए होता है, अर्थ में विभिन्नता नहीं आती (37)।" चीन और अफ्रीका की भाषाओं में सुर भेद से अर्थ भेद हो जाता है (38)। इस प्रकार प्राचीन संस्.त ध्वनियों में स्वी.त 'उदात्तादि स्वर भेद से अर्थ भेद' विदेशी भाषाओं में अद्यावधि विद्यमान है। वर्तमान लोक व्यवहार में विराम अल्पविराम आदि से अर्थ व भाव में अंतर देखा जा सकता है जैसे 'रूको, मत जाओ' या 'रूको मत, जाओ'। भाषा विज्ञान उक्त नियमों को व्याकरणिक बन्ध न देकर उपलब्ध भाषा की आलोचना मात्र करता है।

*****

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋक् प्रातिषाख्य (1.27)
2. तैत्तिरीय प्रातिषाख्य (19.3)
3. वाजसनेयि प्रातिषाख्य (1.60, 1.61)
4. वा० प्रा० (1.59)
5. तै० प्रा० (1.31–34)
6. वा० प्रा० (1.55), ऋक् तन्त्र (40)
7. चतुरअध्यायिका (1.59)
8. ऋ० प्रा० (1.18)
9. तै० प्रा० (1.35), वा० प्रा० (1.57)
10. चतु० अ० (1.60)
11. ऋक् तंत्र (43)
12. ऋ० प्रा० (1.30), तै० प्रा० (1.36), वा० प्रा० (1.58)
13. चतु० अ० (1.62)
14. ऋ० तं० (44)
15. ऋ० प्रा० (13.50)
16. ऋ० प्रा० (13.40), चतु० अ० (1.40)
17. ऋ० प्रा० (उव्वट भाष्य) 13.41।
18. ऋ० प्रा० (13.40)
19. तै० प्रा० (2.26, 28, 29)।
20. वा० प्रा० (1.73)
21. ऋ० तं० (38)
22. चतु० अ० (1.59–60)
23. तै० प्रा० (वैदिकाभरण भाष्य) (1.37)।
24. तै० प्रा० (वै० आ० भा०) (1.37), व्यास षिक्षा (445)।
25. तै० प्रा० (22.13)।
26. तै० प्रा० (त्रि० भा० र०) 22.13।
27. ऋ० प्रा० (उ० भा०) (2.4)।
28. ऋ० तं० (36–40)
29. वा० प्रा० (4.150, 151)
30. ऋ० प्रा० (13.48)।
31. ऋ० प्रा० (उ० भा०) (13–38)।
32. अश्टाध्यायी (1.2.27)
33. महाभाष्य (8.2.106)
34. अश्टाध्यायी (1.4.110)
35. षुक्ल यर्जुवेद और शिक्षा ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन (डा० विष्वनाथ राम वर्मा) (पृ० 113)।
36. सामान्य भाषा विज्ञान (डा० बाबू राम सक्सेना) (पृ० 78)।
37. सामा० भा० वि० (डा० बाबू राम सक्सेना) (पृ० 79)।
38. सामा० भा० वि० (डा० बाबू राम सक्सेना) (पृ० 79)।